

समकालीन कविता और बाजारवाद

डॉ. दीपक सिंह

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर, सरगुजा,
छत्तीसगढ़

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में बाजारवाद और समकालीन कविता के अंतर्संबंधों की पड़ताल की गई है। बाजारवाद वस्तु, मनुष्य, संवेदना आदि सभी चीजों को एक उत्पाद के रूप में देखता है यह इतिहास, स्मृति को नष्ट कर देना चाहता है जबकि साहित्य का कार्य भाषा के माध्यम से इतिहास, संस्कृति तथा स्मृति का संरक्षण है। इस तरह साहित्य अपने स्वरूप में बाजारवाद विरोधी है लेकिन बाजार की चमक दमक से बचा रह जाना सभी के बस में नहीं है। अतः वर्तमान साहित्यकारों के एक हिस्से में बाजारवादी प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती हैं। समकालीन कविता में कई स्वर मौजूद हैं कितने ही बाजार की भाषा बोलते दिखाई पड़ते हैं लेकिन इन्हें समकालीन कविता का मुख्य स्वर नहीं कहा जा सकता, मुख्य स्वर तो प्रतिरोध का ही है। मुक्तिबोध से शुरू करें तो धूमिल, रघुवीर सहाय, वीरेन डंगवाल, मंगलेश डबराल, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, ज्ञानेंद्रपति, राजेश जोशी, अरुण कमल, आलोक धन्वा, पंकज चतुर्वेदी, कुमार अम्बुज आदि सरीखे कवि मिलकर समकालीन कविता के मुख्य स्वर की रचना करते हैं। यदि एक विस्तृत फलक पर देखा जाय तो समकालीन हिन्दी कविता की राजनैतिक चेतना प्रगतिशील और भविष्योन्मुखी है।

बीज शब्द – बाजारवाद, समकालीन कविता, पूंजीवाद, स्मृति, संवेदना, चिंतन, सौन्दर्यबोध, मनोविज्ञान, उपभोक्ता, सेलिब्रेटी

मानव सभ्यता के विकास के साथ बाजार का अस्तित्व जुड़ा हुआ है। आदिम युग से निकलकर मानव जब खेती-किसानी करने लगा तब व्यवस्था के अंतर्गत जीवन यापन उसकी जरूरत बन गई। इस व्यवस्था में बाजार की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। शुरुआत में बाजार वह जगह होती थी जहाँ जरूरत के सामानों की अदलाबदली की जा सकती थी। कालांतर में मुद्रा के विकास के साथ इसका स्वरूप परिवर्तित हुआ अब पैसे के द्वारा जरूरी चीजों की खरीद-फरोख्त की जा सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सभ्यता के विकास में बाजार की निर्णायक भूमिका रही है। एक देश से दूसरे देश तक ज्ञान-विज्ञान के विस्तार में भी बाजार और व्यापारियों की महती भूमिका रही है। बाजार आज भी हमारे जीवन के लिए बहुत

आवश्यक है। अब सवाल उठता है कि क्या बाजार और बाजारवाद दोनों एक ही हैं? यहाँ हमें फर्क करने की जरूरत है। दरअसल बाजार का अस्तित्व मनुष्य की जरूरतों से है जबकि बाजारवाद एक साम्राज्यवादी परियोजना है। पूँजीवाद अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए बाजारवाद को सर्वव्यापी बनाना चाहता है। यह बाजारवाद मनुष्य को महज एक उपभोक्ता के रूप में देखता है। इसके लिए मनुष्य का कोई और अर्थ है ही नहीं। बाजार से जहाँ हम अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते थे वहीं बाजारवाद हमें हमारी आवश्यकता बताता है। इतना ही नहीं वह निहायत गैर जरूरी चीजों को भी हमारी आवश्यकता बनाकर बेच देता है जैसे कि गोरपन की क्रीम।

बाजारवाद मनुष्य की स्मृति, संवेदना, चिंतन, सौन्दर्यबोध और कल्पनाशीलता को एक खास ढांचे में फिट करने का प्रयास करता है। कुंवर नारायण की पंक्तियाँ हैं -

“वैसे कोई चाहे तो जी सकता है
एक नितांत कविता रहित जिंदगी
कर सकता है
कविता रहित प्रेम”¹

बाजारवाद ‘कविता रहित प्रेम’ की तरह है जिसमें आपकी भावनाओं की कोई जगह नहीं है बल्कि वह भावनाओं को बाजार में बेचने की कला का माहिर है। पंकज चतुर्वेदी लिखते हैं कि ‘एक ऐसी सभ्यता बनाने की तैयारी है जिसकी आँखों में आँसू न हों’। बाजारवाद दरअसल पूँजी का भ्रमजाल है जो हमें यथार्थ से उठाकर स्वप्न लोक में ले जाता है और जब हम यथार्थ की जमीन पर वापस आते हैं तो खुद को कर्ज या बेकार के सामानों से घिरा पाते हैं।

“सो रहा संसार
पूँजी का विकट भ्रमजाल।”²

साधारण तौर पर ‘मानवीय मूल्य’ हमारे सामाजिक जीवन के परिचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहें हैं, दया, क्षमा, करुणा, प्रेम जैसे मूल्यों से हम इंसानियत की पारिकल्पना कर सके हैं। आदमी से इंसान होने की यात्रा बहुत मुश्किल है, मिर्जा गालिब फ़रमाते हैं -

“बस-कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना
आदमी को भी मुयस्सर नहीं इंसाँ होना”³

इतना ही नहीं उस्ताद शायर मीर तक़ी मीर फरमाते हैं -

“मत सहल हमें जानो फिरता है फ़लक बरसों तब खाक के पर्दे से इंसान निकलते हैं”⁴

बाजारवाद इस इंसानियत की धारणा के ही खिलाफ है। बाजारवाद जिस उपभोक्तावादी समाज की रचना करना चाहता है वहाँ सिर्फ और सिर्फ एक मूल्य कार्य करता है और वह है - मुनाफा। आज के हमारे

अस्पताल मुर्दों से पैसा बनाने की कला में माहिर हो चुके हैं आये दिन अखबार की खबरें मानवता को शर्मसार करती रहती हैं -

“बिक रहे मन

बिक रहे तन

देश बिकते दृष्टि बिकती

एक डालर पर समूची सृष्टि बिकती

और राजा ने लगाया

हमें नीलाम पर

एक कौड़ी दाम पर ।”5

बाजारवाद की विशेषता है कि वह संवेदनाओं के साथ खेलता हुआ त्योहारों, रिश्तों आदि सभी को उत्पाद में बदल देने की क्राबलियत रखता है। यह पैकेजिंग और ब्रांडिंग के द्वारा अंतर्वस्तु का हरण कर लेता है। मर्दर्स डे, फ्रादर्स डे, होली, दीवाली, ईद और करवा चौथ जैसे त्यौहार कुछ सीधे बाजार की देन हैं और कुछ बाजार द्वारा पूर्णतः नियंत्रित। उपभोक्तावादी समाज में व्यक्ति इकाई होता है यहाँ सामूहिकता का निषेध है ऐसे में छीजते हुए सामाजिक संबंधों की पैकेजिंग बहुत आसान है। एक मंहगे गिफ्ट से दायित्व निर्वाह की आसान तरकीब बाजार की ईजाद है। यह मनुष्य के उत्तरदायित्व न उठा पाने के अपराधबोध की भरपाई का विज्ञापन करता है और अंतर्वस्तु रहित सामानों का आसानी से व्यापार करता है। बाजारवाद में पुराने का कोई मोल नहीं होता और न ही पुराने के प्रति प्रेम या लगाव का कोई महत्व। किसी भी चीज को नियंत्रित करने के लिए उसके मनोविज्ञान को समझना बहुत जरूरी होता है। बाजार इसके लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाता है। वह सर्व व्यापी हो चुका है उसके जासूस हर जगह सर्वे करने के लिए मौजूद हैं। आपके हाथ में पकड़ा हुआ फोन, आपके द्वारा देखी जा रही फिल्में, विज्ञापन, इंटरनेट सर्च, तरह तरह के ऐप सब आपके पल-पल की खबर पहुंचाते हैं और इसी के अनुसार आपकी हैसियत तय होती है और बाजार सामने आकर आपको आपकी जरूरत बताता है। “हमारे बाजार का आदर्श अब वह बाजार नहीं है जहाँ हम अपनी जरूरत पूरी करने के लिए इकट्ठा होते थे - जहाँ कबीर लुकाठी लिए खड़े होते थे, जिसके लिए गालिब कहते हैं -

और बाजार से ले आयेंगे गर टूट गया

जामे जम से मेरा ये जामे सिफाल अच्छा है ।

अब बाजार का रूप बहु राष्ट्रीय कम्पनियाँ तय करती हैं, जिनके लिए आर्थिक साम्राज्यवाद का रास्ता तथाकथित विकास की गारंटी पाकर हमने खोल दिया है-सौन्दर्य जिसे हमारा कवि ‘चेतना का उज्ज्वल वरदान’ मानता था अब मुक्त बाजार में ठेल दिए गए मालों का बिक्री बढ़ाऊ विज्ञापन है। “सौन्दर्य क्या होता है, यह अब हम अपने कवियों, कलाकारों, शिल्पियों के रचनात्मक बोध से नहीं जानेंगे; टूथपेस्टों या साबुनों के साथ नत्थी ऐश्वर्या रायों और सुष्मिता सेनों की मुस्कुराहटों से जानेंगे। हमारे स्वस्थ ऐन्द्रिय-बोध में

सौन्दर्य को सांस्कृतिक बनाने वाली विशेषता हुआ करती थी उसकी संवेदनात्मकता। सौन्दर्य के उत्तेजनात्मक होने को हमने महज सामान्य जैविक अनुभव के रूप में ही महत्व दिया। उपभोक्तावादी संस्कृति ने सौन्दर्य को संवेदनात्मक मूल्य से सर्वथा विछिन्न करके सीधे-सीधे उसे मात्र उत्तेजनात्मक मूल्य से जोड़ दिया है जिसके चलते मेधा पाटेकर, पी.टी.उषा, तीजन बाई, कर्कतुल-ऐन-हैदर या महाश्वेता देवी जैसी भारतीय औरतों के प्रति हमारा आकर्षण उतना नहीं बढ़ता, जितना माधुरी दीक्षित जैसी औरतों के प्रति।⁶ उपभोक्तावाद अपनी पैठ बनाने के लिए अभिरुचि निर्माण का सहारा लेता है वह मनुष्य को प्रकृति से तो दूर ले ही जाता है इसके साथ ही उसकी स्मृति इतिहास, संवेदना तथा सौन्दर्यबोध को नष्ट करने में कोई संकोच नहीं करता। उसे हर व्यक्ति सिर्फ उपभोक्ता के रूप में चाहिए। पूंजीवाद अपना मुनाफा बरकरार रखने के लिए आक्रामक साम्राज्यवाद से लेकर फासीवाद तक का सहारा लेने से पीछे नहीं हटता। मुक्त बाजार की अवधारणा जो सुनने में बहुत अच्छी लगती है दरअसल एक खतरनाक परियोजना का हिस्सा रही है, तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों की सम्पदा की लूट को अंजाम देने के लिए पूंजीवाद ने इसे सोने के वर्क में लपेट कर दुनिया के सामने पेश किया जिसके परिणाम स्वरूप अफ्रीका, एशिया के कितने ही देश बदहली के कगार पर पहुच गए हैं।⁷ यह मुक्त बाजार पूंजीवाद का सबसे बुरा पक्ष है। यह इस बात को सुनिश्चित नहीं कर सकता कि मुनाफा जायज तरीके से हासिल किये जायेंगे या उनका वितरण जायज तरीके से होगा। इसके विपरीत मुनाफों और उत्पादन को बढ़ाने की लिप्सा लोगों को उनके आड़े आने वाली किसी भी चीज के प्रति अंधा बना देती है। जब विकास दूसरे किन्हीं भी नैतिक सोच-विचारों से अमर्यादित होकर अपने आप में सबसे बड़ा स्वार्थ बन जाता है, तो वह आसानी से विनाश का कारण बन सकता है।⁷ समकालीन हिन्दी कविता ने बाजारवाद को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझते हुए उसके खतरों को रेखांकित करने की प्रौढ़ समझ दिखाई है। नब्बे के दशक में आर्थिक उदारवाद और भूमण्डलीकरण की घोषणा के बहुत पहले ही उसने पूंजीवाद के सम्बन्ध में समझ विकसित कर ली थी इसलिए उपभोक्तावाद का छद्म उसे भरमा नहीं सका। यह भी कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हिन्दी कविता का बड़ा हिस्सा जनपक्षधर रहा है जिसने उपभोक्ता को अंतिम आदमी के नजरिये से देखने की दृष्टि उसे सहज ही प्रदान कर दी। वर्तमान समय में उदारीकरण, बाजारीकरण ने पूँजी के अबाध निवेश को संभव बनाया है। मुक्तिबोध ने बहुत पहले इस चीज को भांप लिया था -

“साम्राज्यवादियों के

पैसों की संस्कृति

भारतीय आकृति में बंधकर

दिल्ली को

वाशिंगटन व लन्दन का उपनगर

बनाने पर तुली है !!

भारतीय धनतंत्री

जनतंत्री बुद्धिजीवी

स्वेच्छा से उसी का ही कुली है !!”8

बाजारवाद ने जिस चमक-दमक को पैदा किया है और जिसे विकास का मानक माना जा रहा है दरअसल वह पूँजी के कालेपन की उपज है। विकास की इस अवधारणा को पुष्ट करने में सत्ता उसके साथ है। यह बाजार उपयोगिता की बात ही नहीं करता। उपयोगिता मूल्य उसके लिए मायने नहीं रखता वह उत्पाद को मनुष्य की प्रतिष्ठा से जोड़ता है। ‘दिखावा’ या दिखावे की संस्कृति बाजारवाद की ही देन है। उपभोक्तावाद के लिए यह आवश्यक है कि ज्यादा से ज्यादा उपभोग हो, यह उसकी जीवन रेखा है। उसे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उपभोग मनुष्य को बीमार करेगा या मार डालेगा। यह तकनीकी का सहारा लेकर वस्तुओं को तेजी से बदलता रहता है, बाजार में आयी कोई भी चीज साल- छः महीने में आउट-डेट हो जाती है वह चाहे कार हो या मोबाइल फोन। अपनी इस रणनीति से वह उपभोक्ता के अन्दर अनंत भूख पैदा करता है, बाजार में आया हर नया माडल हमारी प्रतिष्ठा को चुनौती देता है - “...उपभोक्तावाद ने लोकप्रिय मनोविज्ञान(‘इसे करके तो देखिए!’)की मदद से इसके लिए बहुत कड़ी मेहनत की है कि लोगों को यह यकीन दिलाया जा सकता कि विलासिता आपके लिए अच्छी चीज है, जबकि अल्पव्यय आत्मदमन है।

यह इसमें कामयाब रहा है। हम सब अच्छे उपभोक्ता हैं। हम ऐसी असंख्य चीजें खरीदते हैं, जिनकी हमें वाकई जरूरत नहीं होती, और जिनके अस्तित्व के बारे में कल तक हमें जानकारी भी नहीं थी। निर्माता जानबूझकर अल्पजीवी चीजें तैयार करते हैं और पूरी तरह संतोषजनक उत्पादों के ऐसे नए और अनावश्यक माडल ईजाद करते हैं, जिनको हमें फैशन में बने रहने के नाते खरीदना अनिवार्य होता है। खरीददारी एक चहेता सगल बन गया है और उपभोग की वस्तुएं परिवार के सदस्यों, दम्पतियों और दोस्तों के बीच के रिश्ते में अनिवार्य बिचौलियों की भूमिका निभाने लगी हैं।”9 इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि रिश्तों का वजन बाजार तय करे, प्रेम की गहराई गिफ्ट की कीमत पर निर्भर हो। समकालीन हिन्दी कविता उपभोक्तावाद के इस रूप बहुत मजबूती से रेखांकित करती है और इसके पीछे के यथार्थ को खोलकर सामने रख देती है। आज इतना बड़ा दृष्टि भ्रम निर्मित हो चुका है कि महानगरी मध्य और अभिजात वर्ग को अपने पिछवाड़े बसे झुग्गी-झोपडी के यथार्थ की रंचमात्र खबर नहीं है। ग्लोबल हंगर इंडेक्स में भारत 107 वें नंबर पर है लेकिन भूख की बात आने पर यह वर्ग कहेगा आज कौन भूखा है? यह सब देश को बदनाम करने के लिए फैलाया गया झूठ है इसीलिए वीरेन डंगवाल लिखते हैं -

“किसने आखिर ऐसा समाज रच डाला है

जिसमें बस वही दमकता है , जो काला है ?

मोटर सफ़ेद वह काली है

वे गाल गुलाबी काले हैं

चिंताकुल चेहरा-बुद्धिमान
पोथे कानूनी काले हैं
आटे की थैली काली है
हर साँस विषैली काली है
छत्ता है काली बरों का
वह भव्य इमारत काली है
कालेपन की वे संतानें
हैं बिछा रहीं जिन काली इच्छाओं की बिसात
वे अपने काले पन से हमको घेर रहीं
अपना काला जादू हैं हम पर फेर रहीं ।” 10

बाजारवाद इसी कालेपन का प्रतीक है। समकालीन हिन्दी कविता के समक्ष दो बड़ी चुनौतियाँ हैं। उपभोक्तावाद के इस दौर में अपने को जनपक्षधर बनाये रखना दूसरा बाजार के प्रलोभनों से स्वयं को बचाना। यदि इस नजरिये से देखें तो मिली-जुली तस्वीर दिखाई पड़ती है। एक नई पीढ़ी आई है जो रातों-रात सेलिब्रेटी बनना चाहती है, सोशल मीडिया ने उससे धैर्य छीन लिया है। इसे यदि इस रूप में समझा जाय जैसे ‘बाजार के लिए सब कुछ बिकाऊ है’ यह मानसिकता कवियों के एक वर्ग में बड़ी तेजी से पनपती दिखाई पड़ रही है। इस मानसिकता को रघुवीर सहाय अपनी एक कविता में यों दर्ज करते हैं -

“ (कैमरा दिखाओ इसे बड़ा-बड़ा)
हाँ तो बताइए आपका दुःख क्या है ?
जल्दी बताइए वह दुःख बताइए
बता नहीं पायेगा
आपको अपाहिज होकर कैसा लगता है
कैसा
यानी कैसा लगता है
(हम खुद इशारे से बताएँगे क्या ऐसा)
आप जानते हैं कि कार्यक्रम को रोचक बनाने के लिए
हम पूछ-पूछ उसको रुला देंगे
इंतजार करते हैं आप भी उसके रोने पड़ने का
करते हैं ?” 11

मीडिया और विज्ञापनों की हकीकत को यह कविता उघाड़ कर रख देती है। आपका दुःख आपका तभी तक मायने रखता है जब तक वह बिकाऊ है। सच बात यह है कि मीडिया उपभोक्तावाद का सबसे बड़ा हथियार है। रघुवीर सहाय और उनके बाद की पीढ़ी यथार्थ को कभी ओझल नहीं होने देती, वह हमेशा आगाह करती चलती है लेकिन वर्तमान पीढ़ी के लिए यही बात कह पाना मुश्किल है। हिन्दी में कुछ

वेबसाइट साहित्य में सेलिब्रेटी पैदा करने का अभियान चलाये हुए हैं, यह बाजारवाद की हिंदी कविता में मजबूत पैठ है। सदानीरा पर एक अध्याय है- 'वर्ष 2018 को गुदावर्ष घोषित कर दो' यहाँ प्रकाशित कुछ कविताओं के उदाहरण देखिए -

“क्या

जानना

चाहते

हो

तुम्हारे प्रेम में मेरी भूख नष्ट हो गई?

निद्रा के विषय में गुदा मौन है

या किसी नष्टप्रायः, पुरातन छंद को

पुनर्जीवित करके तुम मेरी गुदा की उपमा

मेरे ही कमलनयनों से दोगे ।”12

एक और

“गुदा से प्रेम करने का अर्थ है

मनुष्य की गहराई से प्रेम करना,

उसके अँधेरो से प्रेम करना

उसके दुःख से प्रेम करना

गुदा से प्रेम करने का अर्थ है,

दुःख में केवल दुखी नहीं होना

बल्कि प्रेमी के दुःख में प्रवेश करना और उसे सुखलोक में ले जाना ।”13

ऐसा नहीं कि हिन्दी कविता में यह पहली बार हुआ है, यहाँ एक दौर अकविता का भी हो गुजरा है लेकिन समकालीन कविता में यह धमक बाजार के साथ जुगलबंदी का उदाहरण है। यह एक मात्र उदाहरण है जिसे प्रतिनिधि के तौर पर देखा जा सकता है। एक विज्ञापन पंक्ति है ‘चलो कुछ तूफानी करते हैं’ क्या आपको ये कवितायें कुछ इसी तरह की नहीं लगतीं? साहित्य और बुद्धिजीवियों का एक बड़ा हिस्सा हमेशा से सत्ता से गलबहियां करता रहता है। निराला की कविता राजे ने अपनी रखवाली की, मुक्तिबोध की कविता ‘अँधेरे में’ इस सच्चाई को बहुत बेबाकी से उजागर करती हैं लेकिन यह भी सच है कि पूजा और सत्ता की कोख में बैठा सृजन न कभी कालजयी हुआ न भविष्य गामी। तो समकालीन कविता का बड़ा वृत्त आज भी बाजार और सत्ता का प्रतिपक्ष रचता है। पंकज चुतर्वेदी लिखते हैं “कवि को सच कह सकना चाहिए: न सिर्फ सत्ता से, बल्कि जनता से भी।

शोहरत तो मूल्य विमुख होकर भी पाई जा सकती है, मगर सार्थकता नहीं। इस लिए कई बार मुख्य धारा के विरुद्ध रहना और अकेले पड़ जाने का जोखिम उठाना अंततः उस वृहत्तर समाज के लिए श्रेयस्कर है, जिसके कि हम नागरिक हैं। शायद इसी मानी में देवी प्रसाद मिश्र ने लिखा है: “एक भुला दिया गया

कवि / बहुत याद किये जाते शासक से बेहतर होता है।”¹⁴ इस उद्धरण के हवाले से कहा जाय तो वर्तमान कवियों को यह समझना होगा कि कवि एक परफॉर्मर नहीं है, उसकी सामाजिक भूमिका और उत्तरदायित्व है। सृजन से यश की कामना कोई बुरी बात नहीं लेकिन यथार्थ की जमीन को छोड़कर किया गया सृजन कभी भी भविष्योन्मुखी नहीं हो सकता। पंकज चतुर्वेदी अपने इसी संस्मरण में मंगलेश डबराल के हवाले से लिखते हैं-“इस सन्दर्भ में गौर तलब है कि ‘इन्डियन एक्सप्रेस’ को 4 सितम्बर 2016 को दिए गए इंटरव्यू में आपने उपभोक्तावाद और टेक्नोलॉजी का विरोध किया और भाषा और साहित्य के बुनियादी कर्तव्य का स्मरण कराया: “कल्पना के लिए स्मृति अपरिहार्य है और टेक्नोलॉजी और उपभोक्तावाद स्मृति को नष्ट करते हैं। कितने लोगों को याद रहता है कि दो साल पहले वे कौन सा मोबाइल इस्तेमाल करते थे या पिछले वर्ष कौन-से कपड़े उन्होंने खरीदे थे? टेक्नोलॉजी के द्वारा स्मृति ही नहीं इतिहास भी मिटाया जा रहा है और शायद भाषा और साहित्य ही इसका प्रतिरोध कर सकते हैं।” इसलिए सवाल यह नहीं है कि हम कितने लोगों को खुश कर सकते हैं : बल्कि यह है कि कितने लोगों को हम एक बेहतर दुनिया के लिए बेचैन, रचनात्मक और स्वप्नशील बना सकते हैं।”¹⁵ यह बात आश्चर्यकारक है कि हमारे समकालीन रचनाकार बाजारवाद के खतरे को पूरी गंभीरता से उजागर करते हैं। उपभोक्तावाद ने इतिहास, स्मृति आदि पर जो बर्बर हमला किया है, हमारे साहित्यकार सिर्फ उसका वर्णन ही नहीं करते बल्कि उसका मुकाबला करने की सही रणनीति भी पेश करते हैं। समकालीन कविता में कई स्वर मौजूद हैं कितने ही बाजार की भाषा बोलते दिखाई पड़ते हैं लेकिन इन्हें समकालीन कविता का मुख्य स्वर नहीं कहा जा सकता, मुख्य स्वर तो प्रतिरोध का ही है मुक्तिबोध से शुरू करें तो धूमिल, रघुवीर सहाय, वीरेन डंगवाल, मंगलेश डबराल, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, ज्ञानेंद्रपति, राजेश जोशी, अरुण कमल, आलोक धन्वा, पंकज चतुर्वेदी, कुमार अम्बुज आदि सरीखे कवि मिलकर समकालीन कविता के मुख्य स्वर की रचना करते हैं। यदि एक विस्तृत फलक पर देखा जाय तो समकालीन हिन्दी कविता की राजनैतिक चेतना प्रगतिशील और भविष्योन्मुखी है।

सन्दर्भ-

1. नारायण कुंवर : कविता की जरूरत <http://kavitakosh.org/kk>
2. शुक्ल दिनेश कुमार : एक पेड़ छतनार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण : 2017 पृष्ठ -33
3. संपादक: जाफ़री अली सरदार, दीवान-ए-गालिब, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली -2010 पृष्ठ 56
4. मीर तक़ी मीर : जिन के लिए अपने तो यूँ जान निकलते हैं <https://www.rekhta.org/ghazals/jin-ke-liye-apne-to-yuun-jaan-nikalte-hain-mir-taqi-mir-ghazals?lang=hi>
5. शुक्ल दिनेश कुमार : एक पेड़ छतनार, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण : 2017 पृष्ठ -33
6. कुमार राजेंद्र : प्रतिबद्धता के बावजूद, स्वराज प्रकाशन दिल्ली 2009 पृष्ठ 85

7. हरारी युवाल नोवा : सेपियंस मानव-जाति का संक्षिप्त इतिहास, अनुवाद -मदन सोनी, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल 2011, पृष्ठ-359
8. संपादक: जैन नेमिचंद, मुक्तिबोध समग्र खंड-2 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2019 पृष्ठ-89-90
9. हरारी युवाल नोवा : सेपियंस मानव-जाति का संक्षिप्त इतिहास, अनुवाद -मदन सोनी, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल 2011, पृष्ठ-377
10. डंगवाल वीरेन : दुष्चक्र में स्रष्टा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-2002 पृष्ठ -15
11. सहाय रघुवीर :कैमरे में बंद अपाहिज <http://kavitakosh.org/kk>
12. अम्बर पाण्डेय : (<https://sadaneera.com/hindi-poems-of-amber-pandey-and-monika-kumar/>)
13. मोनिका कुमार : (<https://sadaneera.com/hindi-poems-of-amber-pandey-and-monika-kumar/>)
14. संपादक : ज्ञानरंजन, केशवानी राजकुमार, पहल-125 , प्रकाशक -पहल, जबलपुर अप्रैल 2021 पृष्ठ-41)
15. संपादक : ज्ञानरंजन, केशवानी राजकुमार, पहल-125 , प्रकाशक -पहल, जबलपुर अप्रैल 2021 पृष्ठ-42)